

योग का आयुर्वेदिक पक्ष

पिछले अध्यायों में योग का अर्थ, हठयोग व राजयोग के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने एवं महर्षि पतंजलि तथा श्री अरविन्द के योग सम्बन्धी विचारों के विविध सैद्धान्तिक पक्षों एवं व्यवहारिक उपयोगिता का वर्णन करने के पश्चात् अब हम इस स्थिति में हैं कि योग के विविध क्रियात्मक पक्षों का विवेचन करें। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि हठयोग एवं राजयोग के विविध चरण भी इनके मार्गों को क्रियात्मक रूप में अपनाने का निर्देश देते हैं एवं क्रियात्मक व्यवहार के बिना कोई भी सिद्धि संभव नहीं है, यह भी स्पष्ट करते हैं। यहीं क्रियात्मक पक्ष के दो दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं- पहला योग सिद्धि के लिए दूसरा आयुर्वेद, तंत्र एवं शिक्षा के लिए। क्रियात्मक पक्ष के दूसरे पहलू की ओर आगे बढ़ते हुए अब हम योग एवं आयुर्वेद के बीच स्थिति अपरिहार्य सम्बन्धों की चर्चा करते हैं। आयुर्वेद के सिद्धान्तों के विवेचन का मुख्य आधार के रूप में पातंजल एवं अरविन्द योग के साथ चरक के सिद्धान्तों को भी स्पष्टता के उद्देश्य से लिया गया है। परन्तु सर्वप्रथम हम आयुर्वेद के परिचय से प्रारंभ करते हैं।

आयुर्वेद के प्रमुख आचार्य चरक एवं सुश्रुत ने आयुर्वेद को अथर्ववेद के रूप में माना है, किन्तु 'कश्यप' ने आयुर्वेद को पंचम वेद माना है क्योंकि वेद आयुर्वेद पर ही आश्रित है। किसी भी वेद के अध्येता या वेदांग के अध्येता जब वेदना से क्लान्त होते हैं, तब आयुर्वेद की ही शरण में जाते हैं। आयुर्वेद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मूल है, क्योंकि स्वस्थ पुरुष ही धार्मिक या लौकिक क्रियाओं का सम्पादन कर सकता है और स्वास्थ्य प्रदान करने में योग व आयुर्वेद ही समर्थ है। जिस प्रकार दक्षिण हाथ में पाँच अंगुलियों में अंगुठा उनका अधिपति और प्रधान होता है, उसी प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से भिन्न आयुर्वेद पंचम वेद है।¹ आयुर्वेदिक तथा योग एक समान प्राचीन मानव हितकारी विद्याएँ हैं। वस्तुतः योग 'आयुर्वेद' का ही अंग है। आयुर्वेद आयु अर्थात् जीवन

का विज्ञान है जिनमें शरीर, इन्द्रिय, सत्व तथा आत्मा के संयोग को आयु कहा गया है। वही योग सिद्धान्तः सत्व तथा चेतना का विज्ञान है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में योग प्रथमतः मानस स्वास्थ्य तथा चैतन्य विकास से सम्बन्धित है। परन्तु यह वैशिष्ट्य होने पर भी योग आयु के विज्ञान आयुर्वेद का ही एक विशिष्ट अंग है। सम्भवतः आयुर्वेद के ही मानस-विज्ञान तथा चेतनाशास्त्र का विशेष रूप से विकसित करने के लिये योग शास्त्र का पृथक् से विकास किया गया। कुछ विद्वानों का मत है कि आयुर्वेद, योग तथा व्याकरण शास्त्र ये तीनों विद्याएँ क्रमशः शरीर मन तथा वाणी की शुद्धि के लिये एक आचार्य महर्षि पतंजलि द्वारा विकसित की गयी है। हठयोग के ग्रन्थों में वर्णित षट्कर्मों का आयुर्वेदीय पंचकर्म से सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक मेल है। वस्तुतः इन शोधन विधियों के सिद्धान्त तथा विधि का विकास आयुर्वेद में ही पहले हुआ बाद में हठयोग के आचार्यों ने इनको योग में सम्मिलित कर लिया।

योग एवं आयुर्वेद मूलतः अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं¹ आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति मनः कायिक आधार पर समग्र स्वास्थ्य को परिभाषित करती है। महर्षि सुश्रुत के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति वह है जिसके दोष, अग्नि, धातुएँ आदि ये सभी सम्मिलित हैं² वस्तुतः यह शरीर एवं मन से पूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा है जो यौगिक स्वास्थ्य की अवधारणा को ही पुष्ट करती हैं। जिसमें मोक्ष को या समाधि अवस्था को स्वास्थ्य की चरमोत्कर्ष अवस्था माना गया है। आयुर्वेद में इसी उत्कृष्ट अवस्था की प्राप्ति के लिये नैष्ठिक चिकित्सा की कल्पना की गई है, और योग शास्त्र का मूल उद्देश्य भी यही है⁴ अर्थात् जब मनुष्य विविध बन्धनों से मुक्त होकर स्व (आत्म) में स्थिर हो जाता है तो वह स्वस्थ कहा जाता है। फिर वही तो मोक्ष भी है⁵ आयुर्वेदीय चिकित्सा भी मानसिक स्वास्थ्य पर सत, रज एवं तम गुणों के आधार पर दृष्टि डालती है⁶ यहाँ सत्व, मन की चैतन्य, हल्की एवं सुखद अवस्था का द्योतक है और यह रोगों से मुक्त रहती है। रजस् सक्रियता एवं गति का प्रतीक है। इससे तमाम तरह की इच्छाएँ, कामनाएँ और आकांक्षाएँ जन्म लेती हैं। विविध मानसिक रोग इसमें जन्म लेते हैं। तमस जड़ता एवं भारीपन का द्योतक है। यह अचेतनता,

जड़त्व एवं निष्क्रियता का प्रतीक है। यह मन की ग्रहणशीलता एवं सक्रियता में बाधा डालती है। इसकी वृद्धि में भ्रम, आलस्य, निद्रा, तन्द्रा और दैन्यता आदि पैदा होते हैं।

आयुर्वेद के मत में रजस् एवं तमस अवस्थाएँ मानसिक स्वास्थ्य में व्यवधान डालती है। चरक में विभिन्न स्थान में तमस एवं रजस दोषों द्वारा उत्पन्न विविध मानसिक विकारों का वर्णन किया है, वे हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मद, शोक, चिन्ता, उद्वेग, हर्ष आदि।⁷ जब ये भाव संवेग सामान्य मात्रा में रहते हैं तो व्यक्ति को नुकसान नहीं पहुँचाते, इनकी असामान्य मात्रा में वृद्धि विविध मानसिक रोगों को पैदा करती है।⁸

इस तरह यौगिक एवं आयुर्वेदीय चिकित्सा की परम्परा में मानसिक स्वास्थ्य के ऊपर दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। मानसिक स्वास्थ्य की विविध अवस्थाओं को जहाँ इसकी चित्त भूमियों (अवस्थाओं) के रूप में विवेचित किया गया है। वही मानसिक अस्वस्थता के मूल कारणों को पाँच क्लेशों के रूप में स्पष्ट किया गया है, जो हैं - अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन क्लेशों को यौगिक क्रियाओं द्वारा दूर कर आयुर्वेदीय चिकित्सा की जाती है।⁹

आयुर्वेदीय तथा योग एक समान प्राचीन मानव हितकारी विद्याएं हैं। वस्तुतः योग आयुर्वेद का ही अंग है। आयुर्वेद आयु अर्थात् जीवन का विज्ञान है, जिनमें शरीर, इन्द्रिय, सत्त्व तथा आत्मा के संयोग को आयु कहा गया है -

शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम् (च0सू0 1)।

आयुर्वेद जहाँ एक ओर त्रिसूत्री शास्त्र के रूप में विकसित शरीरेन्द्रियसत्त्वाम संयोग रूप जीव के स्वास्थ्य-परिरक्षण तथा व्याधि के निदान, लिंग एवं चिकित्सा का दायित्व लेकर चलता है, वहीं योग सिद्धान्ततः सत्त्व तथा चेतना का विज्ञान है। यह तत्त्वज्ञान तथा तत्त्वानुभूति के अतिरिक्त अत्यन्तिक दुःखः-निवृत्ति तथा मोक्ष प्रवर्तक विद्या तथा विधि है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में योग प्रथमतः मानस स्वास्थ्य तथा चैतन्य विकास से सम्बन्धित है।

परन्तु यह वैशिष्ट्य होने पर भी योग आयु के विज्ञान 'आयुर्वेद' का ही एक विशिष्ट अंग है।

सम्भवतः आयुर्वेद के ही मानस-विज्ञान तथा चेतनशास्त्र को विशेष रूप से विकसित करने के लिये योगशास्त्र का पृथक् से विकास किया गया। कुछ विद्वानों का मत है कि आयुर्वेद योग तथा व्याकरणशास्त्र ये तीनों विद्याएँ क्रमशः शरीर, मन तथा वाणी की शुद्धि के लिये अलग-अलग एक ही आचार्य के द्वारा विकसित की गयी है। आयुर्वेद का प्रमुख आदिग्रन्थ चरकसंहिता, पातञ्जलयोगसूत्र तथा व्याकरण महाभाष्य ये तीनों एक ही व्यक्ति या सम्प्रदाय या परम्परा (पातञ्जलि) द्वारा सृजित है ऐसी कुछ लोगों की मान्यता है। चरकसंहिता सूत्रस्थान के प्रथम श्लोक की व्याख्या करते समय टीकाकारों की निम्नलिखित उक्ति ध्यान देने योग्य है-

पातञ्जलमहाभा-यचरकप्रतिसस्कृतैः।

मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥ च०सू० 1/1।

उक्त चक्रपाणि टीका आयुर्वेद के मूल ग्रन्थों विशेषतः चरक संहिता के अध्ययन से प्रतीत होता है कि योगविद्या का सिद्धान्त तथा सारांश आयुर्वेद में पहले से ही उपलब्ध है। चरकसंहिता के शरीर स्थान में नैष्ठिकी चिकित्सा के प्रसंग में तत्त्वज्ञान तथा तत्त्वानुभूतिमूलक योगविद्या तथा प्रज्ञा का सत्याबुद्धि के रूप में सुस्पष्ट वर्णन है। इन्हीं विषयों का और भी क्रमबद्ध विकसित वर्णन पातञ्जल के योगसूत्र में मिलता है।

आयुर्वेद एवं योग में कई अन्य व्यावहारिक समानताएँ भी हैं। योग व्यायाम के लेखक आचार्य जे०के० पाठक के अनुसार - यौगिक कायसाधना के समानान्तर ही इस काल में एक अन्य महत्वपूर्ण विद्या विकसित हो रही थी - आयुर्वेद। इसके प्रसिद्ध ग्रन्थ चरकसंहिता की रचना भारतीय परम्परा और विश्वास के अनुसार महर्षि चरक द्वारा हुई, जो सम्भवतः कृष्ण सम्राट कनिष्क के राजवैद्य थे। श्री अत्रिदेव विद्यालंकार के अनुसार कृष्ण यजुर्वेद की चरक शाखा के लोग आयुर्वेद की चिकित्सा विद्यालंकार के अनुसार कृष्णयजुर्वेद की चरकशाखा के लोग आयुर्वेद की चिकित्सा - शाखा में बहुत चतुर होते थे।

अतएव वे 'चरक' के नाम से विख्यात हो गए थे। इसी भाव से कनिष्क के राजवैद्य को भी चरक कहा गया होगा। यह 'चरक' सर्वदा घूमा करते थे और योग विद्या में भी कुशल होते थे, इसलिये भी इन्हें चरक कहा जाता था - 'चरवेति चरकः'। आयुर्वेद के चरकसंहिता, नामक ग्रन्थ तथा अन्य ग्रन्थों में 'पञ्चकर्म' के नाम से शरीर - शुद्धि की कुछ ऐसी विधियों का वर्णन है, जिनके द्वारा लोग औषधि-प्रयोग के पूर्व पूर्ण शरीर का शोधन करते थे तथा चिकित्सा भी करते थे। चरकसंहिता के सिद्धिस्थान में वर्णित वमन, विरेचन अनुवासन, आस्थापन तथा शिरोविरेचन कर्म पंचकर्म के अन्तर्गत आते हैं।¹⁰

हठयोग के ग्रन्थों में वर्णित धौति, नेति, बस्ति आदि षट्कर्मों का आयुर्वेदीय पञ्चकर्म से सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक मेल है। वस्तुतः इन शोधन - विधियों के सिद्धान्त तथा विधि का विकास आयुर्वेद में ही पहले हुआ, बाद में हठयोग के आचार्यों ने इनको योग में सम्मिलित कर लिया।¹¹

योग और आयुर्वेद दोनों ही अत्यन्त प्राचीन विद्याएं हैं। दोनों का विकास और प्रयोग समान उद्देश्य के लिये एक काल में और एक ही देश में हुआ।¹²

आयुर्वेद (आयु = जीवन, वेद = ज्ञान या विकास) को आरोग्य के लिये एक बहु-उद्देशीय विज्ञान के रूप में विकसित किया गया है, जिसकी सहायता से जीवन के चारों लक्ष्य-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्राप्ति की जा सकती है।¹³

योग आयुर्वेद का एक अंग रहा है और आयुर्वेद के समानन्तर उसे उक्त उद्देश्य तक पहुँचने में सहायक रहा है। योग का प्राथमिक उद्देश्य मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति की पूर्णता के लिए नहीं था, अपितु इसका विकास मोक्ष-प्राप्ति के लिए किया गया था।¹⁴ आयुर्वेद पूर्णरूप से जीवन का विज्ञान है जबकि योग जीवन-विज्ञान का एक विशिष्ट अंग है, जो विशेषरूप से पुरुष के आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित है। यद्यपि कि यह मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक उन्नयन में भी सहायक है।

यह कहा जा सकता है कि योग और आयुर्वेद दोनों मानव जीवन के एक समान सिद्धान्त पर आधारित है। प्राचीन भारतीय दर्शन के अनुसार शरीर, इन्द्रिय, सत्व एवं आत्मा का संयोग ही आयु है। आयुर्वेद के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक अस्तित्व का वर्णन किया गया है। तीनों प्रकार के कष्टों आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक से छुटकारा पाने के लिए आरोग्य आवश्यक है। इसी आरोग्य के द्वारा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है।¹⁵ जबकि योग विशेषरूप से जीवन के मनो-आध्यात्मिक भावों पर विचार करता है और इसी के द्वारा मोक्ष का प्रवर्तक है - 'योगो मोक्षप्रवर्तकः' (चरक) आरोग्य सहित जीवन की सम्पूर्ण प्राप्ति इसका उद्देश्य नहीं ज्ञात होता, वह तो आयुर्वेद की सहायता से ही सम्भव है। योग और आयुर्वेद दोनों ही समान शैक्षणिक पद्धतियाँ हैं। दोनों में औषधि मन्त्र, जप और समाधि आदि पर मुख्य रूप से बल दिया गया है।¹⁶ आयुर्वेद के आठ अंगों का वर्णन किया गया है।¹⁷ पातञ्जलयोगसूत्र में भी योग के आठ अंगों का वर्णन है।¹⁸ आध्यात्मिक मार्ग में चित्त की शुद्धि के लिए योग में भी औषधियों की उपयोगिता बतलाई गई है जो कि औषधि-अन्न एवं विहार के रूप में है। आयुर्वेद के भी योगाभ्यास का वर्णन किया गया है।¹⁹ इस प्रकार दोनों में मूलभूत समानताएँ हैं। योग सूत्र में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों को बन्धन का कारण बतलाया गया है। इनसे मन में कालुष्य आता है।²⁰ इसका निवारण चित्त शुद्धि है। आयुर्वेद महर्षियों ने भी इस विषय का सम्यक् निरूपण इसी रूप में किया है।²¹

प्राचीन भारतीय संस्कृति में मानव जाति की उत्कर्षता के लिए शरीर, मन एवं वाणी की शुद्धि को विशेष रूप से महत्वपूर्ण बतलाया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि एक ही लेखक ने भिन्न-भिन्न नामों से भिन्न-भिन्न तीन ग्रन्थ मानव जाति के कल्याणार्थ बहुउद्देशीय ग्राह्य ज्ञानसंग्रह के रूप में किया है -

1. चित्त शुद्धि के लिए पातञ्जलयोगसूत्र।

2. वाणीशुद्धि के लिए पातञ्जलमहाभाष्य

3. शरीर शुद्धि के लिए चरकसंहिता (पतञ्जलिकृत)

इस प्रकार योग और आयुर्वेद एक ही प्रकार की ज्ञान पद्धतियाँ हैं और उनका दूरगामी उद्देश्य पूर्ण मानव कल्याण है।

योग एवं आयुर्वेद में अन्तर केवल इतना ही है कि आयुर्वेद की संहिताएँ शारीरिक रोगों के लक्षण एवं उनकी चिकित्सा के साथ-साथ मनो-आध्यात्मिक भावों का भी विवेचन करती है, जबकि योग केवल मनो-आध्यात्मिक पक्षों पर ही विशिष्ट विचार करता है।

आयुर्वेद और योग के न केवल विषय और उद्देश्य एक समान हैं अपितु इनकी शिक्षण-पद्धति व गुरुपदेश परम्परा भी एक समान है। आयुर्वेद के लिए कहा गया है कि ब्रह्म से आयुर्वेद का स्मरण करके दक्षप्रजापति को उसका उपदेश किया, दक्षप्रजापति से अश्विनीकुमार तथा इनसे इन्द्र ने विद्या का ग्रहण किया और प्रथम मानव ऋषि भारद्वाज ने इन्द्र से शिक्षा ली।²² गीता के अनुसार नारायण (विष्णु) ने योग की शिक्षा वैवश्य, मनु, इक्ष्वाकु को प्रदान की तथा इक्ष्वाकु से अन्य राजर्षियों ने ग्रहण किया। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने योग की शिक्षा अर्जुन को दी।

आयुर्वेद में वैद्य की चार वृत्तियाँ बतलाई गई हैं।²³ इसे ही योगसूत्र में मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा के रूप में चित्त प्रसादन के लिए बतलाया गया है।²⁴ मैत्री का अर्थ होता है - प्राणिमात्र के साथ मित्रता का व्यवहार करना। योगसूत्र में मैत्री आदि से बल मिलता है²⁵ तथा इसे संयम के लिए बतलाया गया है। आयुर्वेद में रोगी के राग को दूर करने के जीवमात्र एवं औषधि से मित्रता करने के लिए कहा गया है। करुणा का तात्पर्य भय, दया एवं आर्द्रता से है। आयुर्वेद में इसकी व्याख्या 'आतेषु कारुण्यम्' इस प्रकार करते हैं- मुदितो के स्थान पर आचार्य चरक ने 'शक्ये प्रीति' कहा है। योग के प्रसन्नता के भाव को साध्य रोगों की प्रेमपूर्वक एवं प्रसन्नतापूर्वक चिकित्सा करने के रूप में कहा गया है। उपेक्षा अर्थात् त्याग को चिकित्साशास्त्र में असाध्य रोगों की उपेक्षा के रूप में

लिया गया है जब कि योग में राग, द्वेष, घृणा एवं क्रोध के नाश के लिए प्राणियों में उपेक्षा की भावना से लिया गया है।

इस प्रकार योगसूत्र के चित्तप्रसादन के विषयो को आयुर्वेद में वैद्य की वृत्ति के रूप में कहा गया है। योग के आठ अंगों को आयुर्वेद में निम्न नामों से वर्णित है- सद्, वृत्त, आचार- रसायन, दिनचर्या, ऋतुचर्या आदि के अन्तर्गत अभिनिवेश किया गया है। यम के अन्तर्गत-अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का आयुर्वेद में इस प्रकार वर्णन किया गया है -

अहिंसा:

आयुर्वेद में हिंसा पापकर्म बतला कर त्यागने के लिए कहा गया है।²⁶ हिंसा का त्याग ही अहिंसा है। इसे सद्वृत्त के रूप में वर्णित किया गया है तथा रसायन-सेवन से पूर्व भी एवं आचार-रसायन के अन्तर्गत अहिंसा का वर्णन किया गया है।²⁷

सत्य:

आयुर्वेद में भी आचार-रसायन में सर्वप्रथम 'सत्यवादिनम्' ही कहा गया है।²⁸ सद्वृत्त में भी झूठ न बोलने के लिए कहा गया है।²⁹

अस्तेय:

आचार्य वाग्भट ने अस्तेय को दशविध पापकर्म के अन्तर्गत बतलाया है और उसे शरीर, मन एवं वाणी से त्यागने के लिए कहा गया है।

ब्रह्मचर्य:

जीवन के तीन 'उपस्तम्भों' में ब्रह्मचर्य की गणना की गई है।³⁰ 'आचार-रसायन' में मद्य एवं मैथुन से निवृत्त रहने के लिए बतलाया गया है। ज्वर चिकित्सा में आचार्य चरक ने कहा है कि ब्रह्मचर्य के द्वारा ज्वर से छुटकारा मिलता है।³¹

अपरिग्रहः

अपरिग्रह का अर्थ है - मोह। सद्वृत्त-प्रकरण में दान करने के लिए मोह का त्याग करने के लिए कहा गया है।

इस प्रकार यम के पाँचों भाग जो कि योगसूत्र के वर्णित हैं इनका वर्णन उसी रूप यम के लिए ही आयुर्वेदीय सद्वृत्त एवं आचार-रसायन प्रकरण में किया गया है।

नियमः

योग सूत्र के नियमों का आयुर्वेद में इस प्रकार वर्णन किया है।

शौचः

उत्तम वैद्य के चार गुणों में शौच एक प्रधान गुण है।³² शौच का अभिप्राय कायिक, वाचिक एवं मानसिक शुद्धता से है। इन्हें ही योगी बाह्य शुद्धि के लिए अंग-प्रच्छालन, स्नान, दन्तधावन, कवलग्रह, गण्डूष आदि कर्म बतलाते गये हैं और आभ्यन्तर शुद्धि सामाजिक एवं मानसिक स्तर, धी-धृति-स्मृति का ज्ञान एवं व्यवहार आदि से लेते हैं।

संतोषः

संतोष लौल्य को कष्ट उत्पन्न करने वाले में श्रेष्ठ कहा गया है।³³ यह सन्तोष का विपरीतार्थक है। उसे धारणीय वेगों की गणना में भी गिना गया है। योग सूत्र में संतोष को सर्वोत्तम सुख की संज्ञा दी गयी है।³⁴

तपः

आचार-रसायन के अन्तर्गत कहा गया है कि प्रतिदिन जप, शौच, दान एवं तपस्या करनी चाहिए³⁵ तथा देवता, गो, ब्रह्मण, आचार्य एवं गुरु की सेवा में रत रहना चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने भी तीन बार गायत्री का जप करने के लिए कहा है।³⁶

स्वाध्यायः

स्वाध्याय दिनचर्या का एक अंग है। प्रातःकाल उठकर दोपहर में एवं रात्रि में स्वाध्याय करने के लिए कहा गया है ।

ईश्वर प्राणिधानः

आयुर्वेद में मानस दोष-चिकित्सा के रूप में ईश्वर का ध्यान पूजा-पाठ बतलाया गया है। ज्वर आदि की चिकित्सा में भी विष्णु सहस्रनाम का जप आदि बतलाया गया है।³⁷ दैवव्यपाश्रय-चिकित्सा का आधार ही ईश्वर प्राणिधान है।³⁸

आसनः

आयुर्वेद में हठयोग के वर्णित आसनों का वर्णन नहीं मिलता परन्तु यहाँ स्थिर - सुखपूर्वक बैठने की अनेक अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम अध्ययन-विधि में कहा गया है कि समतल पवित्र स्थान में सुखपूर्वक बैठकर अपने दोष एवं त्रुटियों को दूर करने हेतु तथा दूसरे के दोष एवं त्रुटि को समझने के लिए एकाग्र मन से बैठना चाहिए।³⁹ सद्वृत्र के पालन में कुछ ऐसी शरीर की अवस्थाएँ बतलायी गयी हैं जिनमें अधिक देर तक न बैठने के लिए कहा गया है।

जैसे घुटनों को ऊपर उठाकर देर तक न बैठे।⁴⁰ शरीर को टेढ़ा करके छींक, भोजन, शयन आदि न करने के लिये भी कहा गया है।⁴¹ इस प्रकार आसनों का वर्णन आयुर्वेद में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न रूपों में है। चरक संहिता में वमन-विरेचन प्रकरण में 'जानुसमं सोपाश्रयमानमुपदेष्टुं प्रयच्छेत्' ऐसा उल्लेख मिलता है ।

आयुर्वेद में वायु को प्राणसंज्ञा प्रदान की गई है। वायु को आयु कहा गया है तथा वायु के द्वारा ही प्राणायाम निमेषादि क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। वायु प्राणायाम क्रिया का सम्पादन करता है परन्तु योगोक्त प्राणायाम इस वायु की क्रिया से भिन्न है। वहाँ इस वायु की क्रिया पर नियन्त्रण करना प्राणायाम कहा गया है। आयुर्वेद में वायु को यन्त्र-तन्त्र को

धारण करने वाला कहा गया है - 'वायुस्तन्त्रयन्त्रधर'। इसे प्राण उदान, व्यान, समान और अपान का आत्मा के रूप में कहा गया है तथा यह शरीर की सभी चेष्टाओं का नियन्त्रण एवं प्रणयन करता है। यह सभी इन्द्रियों को अपने विषयों में प्रवृत्त कराने वाला है।⁴² इस प्रकार वायु को शरीर एवं शरीरावयव को धारण करने वाला, चेष्टा गति आदि का नियन्त्रण एवं प्रणयन करने वाला कहा गया है और इसी वायु की गति पर नियन्त्रण होना प्राणायाम शब्द से जाना जाता है।

प्रत्याहारः

आयुर्वेद में मन का कर्म बतलाते समय कहा गया है कि इन्द्रियों का संचालन करना तथा स्वयं अपने को अपने से ही आहत विषयों से रोकना मन के कर्म हैं।⁴³ इसके साथ ही मन तथा इन्द्रियों को स्वस्थ रखने के लिये कहा गया है कि मन के साथ सभी इन्द्रियों स्वाभाविक रूप में विद्यमान रहें और इनमें कोई विकृति न हो। सात्त्येन्द्रियार्थसंयोग द्वारा बुद्धि से ठीक-ठाक विचार कर कार्यों को उचित रूप में करना, देश-काल व आत्मा के विपरीत गुणों का सेवन करना।⁴⁴ तथा इन्द्रियार्थों का अतियोग, मिथ्यायोग और आयोग न करना एवं प्रज्ञापराध न करना आदि कहा गया है। ये दूसरे शब्दों में प्रत्याहार ही है।

धारणा, ध्यान एवं समाधिः

आयुर्वेद में मानस दोष की चिकित्सा के लिये धारणा, ध्यान एवं समाधि को दूसरे रूप में बतलाया है। आचार्य चरक ने मानस रोगों का चिकित्सासूत्र बतलाते समय समाधि को बतलाया है। समाधि के पहले आचार्य ने ज्ञान-विज्ञान धैर्य एवं स्मृति को बतलाया है।⁴⁵ दूसरे स्थान पर आचार्य ने कहा है कि मानस रोग उपस्थित होने पर धर्म, अर्थ एवं काम का ध्यान करना चाहिये तथा आत्मा आदि का ज्ञान अर्थात् धारणा करना चाहिये।⁴⁶ दूसरे आचार्यों ने भी धी - धृति एवं आत्मा का ज्ञान मानस दोष की चिकित्सा के लिये उत्कृष्ट औषधि बतलाया है।⁴⁷

इस प्रकार आयुर्वेद में धारणा - ध्यान को धी- धृति आत्मा में चित्त से लगाने के रूप में कहा गया है तथा समाधि को उसी रूप में उसी शब्द से ग्रहण किया है। आत्मा आदि के ज्ञान को योग शब्द से ग्रहण किया गया है। समाधि आदि संयम मोक्ष के लिये ही उपयोगी है और उपर्युक्त योग भी मोक्षप्रवर्तक है।⁴⁸ हठयोग एवं तंत्रशास्त्र में छः प्रधान कर्म बतलाकर उसे षट्कर्म की संज्ञा दी गयी है। ये कर्म प्रधानता शोधनकर्म ही है। आयुर्वेद में शोधन कर्म के लिये पंचकर्म का उपयोग किया जाता है। साथ ही स्नेहन-स्वेदन-नस्य-धूम- गण्डूष-कवलग्रह आदि का उपयोग दोनों पद्धतियों में किया गया है। इन कर्मों का उपयोग भी स्वस्थ एवं आतुर दोनों के लिये किया जाता है।⁴⁹

चरकसंहिता आयुर्वेद की प्राचीनतम् संहिताओं में से एक है, जिसमें अत्यन्त उच्चकोटि के योग का वर्णन किया गया है। इसमें विस्मृत रूप से प्रज्ञा का सिद्धान्त और योगस्थ पुरुष के लक्षण बतलाये गये हैं, जो कि पतंजलि के योगसूत्र में बतलाये गये ऋतम्भराप्रज्ञा के समान हैं और जो भगवद्गीता में बतलाया गया योगस्थ पुरुष है।⁵⁰ जबकि आचार्य चरक ने यम-नियम आदि की भौति सद्वृत्त, आचार - रासायन, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या आदि योग के बाह्य अभ्यासों का वर्णन किया है एवं साथ ही विशेष रूप से योगाभ्यास की उच्चतम प्राप्ति की स्थिति का भी वर्णन किया है। सत्याबुद्धि सिद्धियों की प्राप्ति अथवा ऐश्वर्य-प्राप्ति जैसे विषयों का भी वर्णन किया है।

आचार्य चरक कहते हैं कि पुरुष जो एक अकेला जीव है, वह लोक प्रतिनिधि स्वरूप है। इनके मत से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (लोक) षड्धात्वात्मक (छः भावों से सृजित) है। जैसे - पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और अव्यक्त ब्रह्म इन्हीं छः धातुओं द्वारा पुरुष, जो कि जीव प्राणी है, बना है।⁵¹ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और मैं एक हूँ तथा यह प्राणी उसका एक भाग है, इस प्रकार के ज्ञान को सत्याबुद्धि कहते हैं।⁵² सत्याबुद्धि -सिद्धान्त आचार्य चरक द्वारा अति मौलिक रूप में कहा गया है, जो कि अति सजीव रूप में वर्णित ज्ञात होता है। यह अपनी मौलिकता एवं संजीवता के कारण पतंजलि की ऋतम्भरा प्रज्ञा की

अपेक्षा अधिक ग्रहण करने योग्य है। पतंजलि का ऋतम्भराप्रज्ञा - सिद्धान्त चरक के सत्याबुद्धि - सिद्धान्त की तुलना में पूर्णतः अस्तित्वविहिन ज्ञात होता है ।

जहाँ तक अरविन्द के योग-समन्वय में योग व आयुर्वेद के प्रश्न का सम्बन्ध है सीधा-सीधा कुछ अधिक विवेचन नहीं मिलता है। परन्तु योग के सम्बन्ध में रोग से मुक्ति चाहे वह शारीरिक रोग हो, मानसिक रोग, आध्यमिक अपूर्णता का रोग हो सबका समाधान वो अति मानसिक विकास के स्तर पर बताते हैं। यदि आयुर्वेद को एक विज्ञान के रूप में स्वीकार किया जाता है जैसे कि आजकल की मान्यता है तो विज्ञान के सम्बन्ध में उनका मानना है कि जड़वादी विज्ञान के द्वारा प्रसारित मिथ्या धारणाओं को संशोधित करना है इस विज्ञान के अनुसार सामान्य मानसिक व भौतिक अवस्थायें तथा हमारे विकास के द्वारा स्थापित हुए मन व शरीर के वर्तमान यथार्थ सम्बन्ध ही ठीक स्वाभाविक व स्वस्थ अवस्थायें हैं कहने की आवश्यकता नहीं है कि स्वयं विज्ञान भी इस अनुद्वार सिद्धान्त की पूर्ण अवहेलना करता है जबकि प्रकृति पर मनुष्य के महत्तर प्रभुत्व की प्राप्ति के लिए भौतिक प्रकृति की सामान्य क्रियाओं में इतने परिश्रम के साथ तथा सफलतापूर्वक सुधार करता है।⁵³ जहाँ तक मनुष्य के द्वारा परिश्रम के साथ सफलतापूर्वक सुधार की बात है इस सन्दर्भ में भूख-प्यास, निद्रा या जागरण, गति या विश्राम, सुख-दुःख, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य, शक्ति-क्लान्ति, इन सब पर खास ध्यान नहीं देना चाहिए। खान-पान सम्बन्धी नियम व प्रतिबन्ध हमारी आन्तरिक उन्नति के लिए उपयोगी होते हैं। आयुर्वेद से शारीरिक, मानसिक, शुद्धि एवं आरोग्यता उनका अन्तिम उद्देश्य आत्म सिद्धि का योग प्राप्त करना है। उनके अनुसार मन को शरीर की चीजों के प्रति आसक्ति या अधीनता का त्याग करना चाहिए।⁵⁴ आयुर्वेद जिस प्रकृति की महत्ता को स्वीकार करते हुए सभी व्याधियों के लिए प्राकृतिक रूप से निदान खोजता है उसे श्री अरविन्द भी स्वीकार करते हैं और उनका मानना है कि शरीर प्रकृति की एक क्रिया मात्र है। और सो भी अनेक क्रियाओं में से एक क्रिया है। प्रकृति की महत्ता को स्वीकार करते हुए नैतिक नियम के रूप में ऋत्

प्रत्यय की स्वीकार्यता कहीं न कहीं चरक के सत्याबुद्धि के समान प्रतीत होती है। अतः अब हम सत्याबुद्धि के वास्तविक उद्देश्य की ओर बढ़ते हैं।

इस प्रकार 'सत्याबुद्धि' अन्तिम वास्तविक ज्ञान की अवस्था है। यह सभी प्रकार के दुःखों को दूर करती है और 'मोक्ष' की ओर ले जाती है। आचार्य चरक के अनुसार 'स्वता' या ममता सभी दुःखों का कारण है। सत्याबुद्धि की उत्पत्ति आत्मा को आत्मसात् कर ऊपर उठाती है, साथ-साथ स्वता (ममता) को भी आत्मसात् कर लेती है। इससे निज एवं सांसारिक दुःखों का अन्त हो जाता है। आचार्य चरक पुनः कहते हैं - "प्रवृत्ति सभी दुःखों का कारण है और निवृत्ति स्वाभाविक प्रसन्नता का स्रोत है।" प्रवृत्ति कर्म के द्वारा आरम्भ होती है सत्याबुद्धि सभी प्रकार के कर्मों का उन्नयन और निवृत्ति का वहन करती है यह निवृत्ति उत्कृष्ट उपलब्धि मानी जा सकती है। अन्तिम अनुभूति और मोक्ष को एक-दूसरे का पर्याय समझा जा सकता है।⁵⁵ इस प्रकार आचार्य चरक ने उच्चकोटि की यौगिक उपलब्धि सत्याबुद्धि आदि का वर्णन किया है और इस प्रकार की उपलब्धि के लिये मानवता का एक मार्ग भी प्रशस्त किया है। उनकी नैतिक शिक्षा उच्च ज्ञान के अर्थ के रूप में बहुत ही सुलझे रूप में विभिन्न प्रकरणों में कही गई है।⁵⁶ उपर्युक्त उच्च ज्ञान अपने में एक अनोखा प्रकार है। आचार्य चरक ने भी ऐश्वर्यों और सिद्धियों को उसी प्रकार करने योग्य बतलाया है जिस प्रकार पातञ्जलयोगसूत्र में कहा गया है। चरक ने ऐश्वर्यों का वर्णन योगियों की स्वभाविक शक्ति के रूप में किया है और कहा है कि जब योग की सिद्धियाँ हो जाती हैं तो निम्न लक्षणों से उनका परिचय मिलता है-

1. **आवेश-** एक आत्मा को दूसरे शरीर में प्रवेश करने की क्षमता इसी को परकाया प्रवेश क्रिया भी कहते हैं ।
2. **चेतसो ज्ञान-** सभी जानने योग्य भावों का ज्ञान तथा दूसरे के मन की बात जानना ।
3. **अर्थानां छन्दतः क्रिया-** शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध को अपनी इच्छा से प्रवृत्त करना अर्थात् जो संभव है उसे कर सकने की क्षमता ।

4. दृष्टि (ईश्वरीय दृष्टि)- अतीन्द्रिय वस्तुओं को आवरण की उपेक्षा कर देखने की क्षमता।
5. ईश्वरीय कर्णक्षमता- कर्णेन्द्रिय द्वारा अपने इच्छित शब्द, चाहे वे दूर हों या नजदीक, सुनने की क्षमता।
6. स्मृति (ईश्वरीय स्मरण)- सभी भावों या तत्वों को समझना।
7. कान्ति (ईश्वरीय कान्ति)- शरीर-वर्ण एवं कान्ति में अत्याकर्षण।
8. प्रत्यक्ष और अन्तर्ध्यान होने की क्षमता- योग सूत्र में इन्हें अष्टसिद्धि के रूप में कहा गया है।
9. अष्टसिद्धियाँ निम्न हैं- (i) अणिमा, (ii) महिमा, (iii) लघिमा, (iv) प्राप्ति, (v) प्राकाम्य, (vi) ईशित्वम्, (vii) वशित्वम्, (viii) कामानसात्वम्।⁵⁷

आचार्य चरक द्वारा वर्णित ऐश्वर्य ही अष्टसिद्धियाँ ज्ञात होती हैं क्योंकि ये आठों एक दूसरे से अधिक अंशों में मिलते हैं। यह कहा जाता है कि सुश्रुतसंहिता के मत से, जो की चरक संहिता जैसी ही उपयोगी संहिता है उन ऐश्वर्यों की प्राप्ति एक विशिष्ट ईश्वरीय द्रव्य 'सोम' से हो सकती है।⁵⁸ योगशास्त्र में उद्देश्य-वैभिन्न्य के कारण व्याधि अवस्था का आयुर्वेदानुसार उल्लेख नहीं है। योगशास्त्र मुख्य रूप से मानसशास्त्र होने से यहाँ मनोविकार एवं आध्यात्मिक विकार मात्रा का उल्लेख है। वस्तुतः शरीर, मन तथा आत्मा को अलग तो किया नहीं जा सकता। सभी मिलकर ही जीव बनता है। अतः उस संयुक्त इकाई जिसे आयुर्वेद में 'आयु' की संज्ञा दी है, का विचार करके ही स्वास्थ्य व व्याधि की कल्पना की गयी है। यह मनोदैहिक इकाई नानाविध बाह्य तथा आभ्यन्तर क्लेशों के प्रभाव के बावजूद धातुसाम्य बनाये रखने में प्रयत्नशील रहती है। फिर भी क्लेश प्रभाव से मनोदैहिक प्रदूषण (विक्षेप) उत्पन्न होते हैं। ये 'विक्षेप' कम हो तो स्वतः दूर हो जाते हैं अन्यथा इनके लिए चिकित्सीय उपाय करने होते हैं। योग-युक्ति का विधान है। इससे शरीर को स्वतः स्वास्थ्य लाभ में गति प्राप्त होती है। आयुर्वेद व योग दोनों ही 'स्वभावोपरमवाद' में विश्वास करते हैं और उनकी मान्यता है कि प्रकृति ही स्वभाव है, विकृति नहीं। अतः

मनुष्य स्वभावतः लाभ सम्बन्धी क्षमता सम्भवतः शिथिल पड़ जाती है और चिकित्सा अनिवार्य हो जाने से स्वामी कुवलयानन्द जी के अनुसार बताये दो प्रमुख कारण जीर्ण व्याधि के उत्पन्न यदि होते हैं, तो यौगिक चिकित्सा से ही ठीक नहीं किया जा सकता उसकी आयुर्वेद औषधीय एवं शास्त्र प्रणिधानीय चिकित्सा करनी ही चाहिए। इसके साथ ही साथ विचारण- पूर्वक आवश्यक यौगिक अभ्यास कराने से अधिक लाभ की सम्भावनाएँ होती हैं। आयुर्वेद के समान योग में भी रोगी के शरीर में प्रतिरक्षात्मक क्षमता करने तथा धातु साम्य स्थापित करने के उपाय बतलाए गए हैं। न कि रोग के कारकों को नष्ट करने पर बल दिया गया है। इस प्रकार योग व आयुर्वेद एक दूसरे के पूरक हैं।

योग और आयुर्वेद एक ही प्रकार के विज्ञान हैं। दोनों एक ही उद्देश्य के लिये एक काल एवं देश में समकालीन विद्वानों द्वारा विकसित की गई शिक्षा पद्धतियाँ हैं। अन्तर केवल इतना है कि आयुर्वेद जहाँ मनुष्य के संपूर्ण लाभ जो कि चतुर्वर्ग के रूप में बताता है, वहाँ योग मनुष्य के मनोआध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करता है। आचार्य चरक ने यम- नियम आदि को सद्वृत्त आचार रसायन एवं चर्चा आदि के रूप में तो बताया ही है साथ ही उच्च श्रेणी का योग भी। उच्च ज्ञान का अभिप्राय अन्तिम वास्तविकता की अनुभूति लोक एवं पुरुष में साम्यता जो कि सत्याबुद्धि है तथा मोक्ष एवं मोक्ष के साधनों का अति विस्तृत रूप में वर्णन किया है।⁵⁹

आधुनिक युग में व्यक्ति योग और आयुर्वेद को बहुत बड़ी संख्या में अपना रहे हैं क्योंकि योग के सिद्धान्तों से अब प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। वह जानता है कि योग शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक विकास तो करता ही है तथा स्वास्थ्य लाभ रोगों से मुक्ति, शान्ति प्रदान करता है। आयुर्वेद भी इसी प्रकार स्वास्थ्य रक्षण व रोग मुक्ति प्रदान करता है। लेकिन आयुर्वेद की औषधियाँ शुद्ध रूप में मिलना थोड़ा कठिन है व औषधियाँ रूपये व पैसे से क्रय की जाती हैं। आलस वाले व्यक्ति तथा जीर्ण रोगों से ग्रसित व्यक्ति, शीघ्र योग की शरण में न जाकर औषधीय इलाज कराके फिर योग की शरण में जाते दिख रहे हैं।

जबकि यदि योग व्यक्ति नियमानुसार करते रहे तो बिना औषधीय सेवन के आलस व जीर्ण रोग दूर हो जाते हैं तथा व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ के साथ-साथ रोग मुक्त हो अध्यात्म लाभ भी प्राप्त कर लेता है। योग व आयुर्वेद में सम्बन्ध स्थापित करने के बाद अब हम आठवें अध्याय योग व तंत्र के सम्बन्धों की विवेचनात्मक व्याख्या करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ० विद्याधर शुक्ल, आयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2005, पृ०-32।
2. चरक संहिता शरीर, पृ०-34।
3. Humours, Metabolic Activities, Tissues, etc.
4. श्रुत शरीर स्थान - 15-41।
5. प्रो० रामहर्ष सिंह, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1999 पृ०-92।
6. चरक संहिता सूत्र स्थान, पृ०-34।
7. चरक संहिता, पृ०-6/5।
8. K.N. Udupa - R.H. Singh (ed.) – Science & Philosophy of India Medicine PP. 274-75।
9. श्री सुरेश वर्णमाल, योग और मानसिक स्वास्थ्य, न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन, न्यू चन्द्रावल, दिल्ली, 2002, पृ०-41।
10. प्रो० रामहर्ष सिंह, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा सुरभारती वाराणसी, 1999, पृ०-77, 78।
11. प्रो० रामहर्ष सिंह, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा सुरभारती वाराणसी, 1999, पृ०-78।
12. (क) आयुर्वेदयतीत्यायुर्वेदः (च०सू० 30/20)
(ख) हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्चते ॥ (च०सू० 1/40)
(ग) प्रयोजन चास्य (आयुर्वेदस्य) स्वस्थस्य स्वास्थ्यरणमातुरस्य विकारप्रशमनं
(च०सू० 30/24)

13. धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्यं मूलमूलतमम् (च०सू० 1/15)।
14. योगो मोक्ष प्रवर्तकः (च०शा० 1/136)।
15. (क) शरीरेन्द्रिय सत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम् ।
नित्यगश्रानुबन्धत्र पर्यायैरायुसाप्यते ॥ (च०सू० 1/41)
16. (क) जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः - यो०सू० 4।
(ख) त्रिविधमौषधिमिति-दैवव्यपाश्रयं, युक्तिव्यापाश्रयं, सत्त्वावजयश्च (च०सू० 11/52)
17. कायबालग्रहोर्ध्वडिशल्यद्रंष्ट्राजरा वृषान् (वा०सू० 1/5)।
18. यो०सू० 2/29।
19. योगारम्भे सततमनिर्वेद (च०शा० 5/21)।
20. यो०सू० 1/4
21. च०सू० - 1
22. अ०ह०सू० - 1/4।
23. च०सू० - 1/26।
24. यो०सू० - 1/33।
25. यो०सू० - 3/33।
26. वा०सू० - 1/21-22।
27. च०चि० - 1/4/30।
28. च०चि० - 1/4/30।
29. च०सू० - 8/19।
30. त्रय उपस्तम्भाः आहारनिद्राब्रह्मचर्यनिति (चरक)।
31. च०चि० - 3।
32. च०सू० 9/6।
33. च०सू० - 25/40।
34. यो०सू० - 2/42।

35. च०चि० - 1/4/31 ।
36. गायत्री त्रिपदां जयेत् तु ।
37. च०चि० - 3/311 ।
38. च०चि० - 3/310 ।
39. च०वि० - 8/7 ।
40. अ०ह० सू० -2/36 ।
41. च०सू० - 8/21 ।
42. च०सू०-12/8 ।
43. च०सू० -1/21 ।
44. च० सू०-8/16 ।
45. च०सू०-1/58 ।
46. च०सू०-11/47 ।
47. अ०ह०सू०-1/26 ।
48. च०शा० -1/137 ।
49. श्री रामहर्ष सिंह, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा संस्कृत सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1999, पृ० - 88 ।
50. च०शा०-1/37, 138, 139, 142 ।
51. च० शा० - 5/3, 4 ।
52. च० शा० - 5/7 ।
53. योग समन्वय श्री अरविन्द, अनुवादक जगन्नाथ वेदालंकार, अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी 1990, पृ० 349 ।
54. योग समन्वय 347 ।
55. च० शा० - 5/16-22, 5/8, 5/11, 5/23 ।

56. द्रष्टव्य - च०शा० 1/142-145 तथा च०शा० - 5/21 ।
57. च०शा० - 1/140-141 ।
58. सु०चि० - 29/13 ।
59. प्रो० रामहर्ष सिंह, योग एवं यौगिक चिकित्सा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1999, पृ०-105, 106, 91 ।